International Journal of Information Movement Vol.2 Issue II (June 2017)
Website: www.ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 139-143

संत कबीर एवं उनकी योग साधना

श्रीमती प्रमिला देवी
सहायक प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
कन्या महाविद्यालय, खरखौदा (सोनीपत)
E-mail: permila10478@gmail.com

साधना, स्वयं को जानने , पहचानने तथा स्वयं को पाने की प्रक्रिया का प्रारम्भ है । साधना के द्वारा व्यक्ति अपनी मानसिकता पर पूर्ण एवं परिपक्व नियन्त्रण पाता है । साधना में परिपक्वता को प्राप्त हुआ व्यक्ति कभी भी समाज का शोषण नहीं करता । वह स्वयं भी सुखी रहता ह तथा दूसरों को भी सुखी रखता है । जिस प्रकार प्राइमरी कक्षाओं में बच्चों को पढ़ाने हेतु प्रतीकों का सहारा लिया जाता है उसी प्रकार साधना की शिक्षा मे मंदिरों तथा मूर्तियों का सहारा लिया गया । ब्रह्मरन्ध्र में मूर्ति के स्वरूप में ध्यानस्थ होने के साथ ही विचार ब्रह्मरन्ध्र में स्थिर होने लगते हैं । जिस क्षण आप जैसे होते हैं उसी प्रकार आपका स्वरूप होता है । जब आप गहरी चिंता में हैं तब आपका स्वरूप चिंता मात्र है, लड़ाई–झगड़े में फंसे है। तो आप झगड़ालू हैं । जब आप ईश्वर के स्वरूप में ध्यानस्थ हैं उस क्षण आपका स्वरूप ईश्वर है ।

ईश्वर में ध्यान लगाने पर शारीरिक वासनाओं, चिंताओं तथा अतृप्तियों के न रहने के कारण शरीर, मन और इन्द्रियॉ स्वतः निरोग होने लगती हैं । जीवन का प्रत्येक क्षण सुखद एवं अमृतमय हो जाता है । इसी मार्ग का नाम योग है । साधक तभी साधक हो सकता है जब वह तनाव अथवा चिंता से सर्वथा मुक्त हो । साधना मार्ग की मुख्य बाधायें हैं वासनाएं। लिप्साएं तथा अतृप्तियां इन्हीं से प्रकट होती है । राग, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा, मोह, चिंता, तनाव, क्रोध तथा प्रतिशोध की भावना ।

हम शरीर ही को रोगी मानते हे। जबकि रोगी है जीव, उसके विचार, उसकी मानसिकता तथा उसका स्वभाव । बिना इनको बदले रोग का पूर्णतः निराकरण संभव ही नहीं है । अभ्यास के द्वारा ही हमने अपने मन, विचार तथा व्यवहार को रोगी बनाया है और अभ्यास के द्वारा ही हम उन्हें धीरे–धीरे ठीक कर सकते है । इसके लिए स्व–प्रेरणा सबसे सरल माध्यम है । साधना से पूर्व हमारा निरोग रहना अत्यंत आवश्यक है ।

कबीर की साधना में योग परमपद या लक्ष्य की प्राप्ति में एक साधन है । इस प्रक्रिया से गुजरकर परपद की प्राप्ति करना साधक का लक्ष्य है । कबीर के योग में हठयोगियों और

नाथपंथियों के समान आसन, प्राणायाम, मुद्रा आदि का समर्थन नहीं है । कबीर योगियों के शृंगी, चिमटा, तिलक, माला इत्यादि बाह्य उपकरणों का भी विरोध करते हैः

'जप माला, छापा तिलक, सरै न एको काम ।'

कबीर के योगादर्श को इस पद से समझा जा सकता हैः

'अबधू जोगी जग थै न्यारा ।
मुद्रा निरति, सुरति कर सींगी, नाद न षंडै धारा ।'

X X X

''ब्रह्म अग्नि मैं काया जारै, त्रिकुटी संगम जागै ।
कहै कबीर सोई जोगेश्वर, सहज सुनि ल्यौ लागै ।।''

इस पद से दो बातें स्पष्ट होती हैं । पहली बात यह कि कबीर आसन, मुद्रा, जप, छापा आदि के पक्ष में नहीं थे । दूसरी बात, उन्होंनें इस पद में यह भी संकेत किया है कि उनका योग किस प्रकार का है । उसका स्वरूप क्या है । यदि इस तरफ विचार किया जाए तो सुरति–निरति, अनाहत नाद, ब्रह्मरंध्र में प्राण और चित्त को स्थिर करना, अजपाजप और सहज शून्य में समाधि आदि कबीर के योग के मुख्य अंग हैं । इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

1.0 सुरति–निरति :–'चित्त की अच्छे प्रकार से रति' को सुरति (सु+रति) कहते । इस शब्द का अर्थ है कि किसी पदार्थ में इतने रस, इतने आनन्द का अनुभव करना कि चित्त की चंचलता शांत हो जाए । निरति का अर्थ है–पूर्णरूपेण रति । निरति, सुरति की चरमावस्था है । सुरति की परिपूर्णता है। कबीर की कई साखियों में सुरति –निरति का प्रयोग मिलता है । कबीर के मतानुसार 'सुरति' इतनी विलक्षण है कि इसकी तुलना न आत्मा से की जा सकती है, न प्राण, मन, बुद्धि, चित्त आदि किसी अन्य तत्व से हो।''1 योग–साधन के मर्म को समझने के लिए 'सुरति–निरति' की भावना पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है । ''कबीर ने इनको क्रमशः व्यष्टि शक्ति और समष्टि शक्ति के रूप में मान्यता दी है तथा इन दोनों के सम्मिलन की स्थिति को 'शंभु' के रूप में व्यक्त किया है । इस प्रकार उन्होंनें अजपा–जाप, लेख–अलेख तथा आपा–आप के परस्पर अभेद हो जाने का निर्देश किया है।''2 कबीर ने इसी को अमरता का साधन घोषित किया है –

''सुरत निरत करि पियै जो कोई, कहै कबीर अमर होय सोई।''

सुरति निरति को कबीर ने शिव और शक्ति का प्रतीक माना है।

2.0 मन–उनमन :– योग के प्रमुख अंग 'ध्यान' की साधना के लिए जिन मुद्राओं की आवश्यकता पड़ती है, वे हैं – अगौचरी, भूचरी, चाचरी, शम्भवी और उन्मनी । इनमें सर्वाधिक महत्त्व की मुद्रा है 'उन्मनी' है । इसलिए सन्तों ने सबसे अधिक इसी मुद्रा के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । यदि उन्मनी या उनमुनी शब्द का विशेषण करते हुए उनका अर्थ परमात्मा लगाकर 'उनमनी' का अभिप्राय परमात्मा की ओर मन का उन्मुख होना लिया जाए तो अनुचित न होगा । उनमनी को 'महामुद्रा' नाम भी दिया गया है । इस मुद्रा का महत्त्व यहाँ तक बतलाया है कि इसके द्वारा जरा, यमत्रास और मरण का निवारण हो जाता है और योगाचार के मुख्य उद्देश्य चित्तशुद्धि की साधक को उपलब्धि हो जाती है। कबीर ने उनमुनी की महिमा का बखान इस प्रकार किया है–

''उन्मुनि चढ़ा गगन–रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।''

3.0 अजपाजप या अजपाजाप :– यदि मनुष्य अपनी श्वास प्रक्रिया की तरफ ध्यान दे तो पाएगा कि वह जीवनपर्यंत निरंतर श्वास भीतर लेता है, फिर बाहर फेंकता है । कबीर माला लेकर राम–राम के उच्चरण में विश्वास नहीं रखते थे । बिना उच्चरण किए हुए श्वास प्रश्वास के साथ राम का स्मरण ही कबीर का अजपाजप है । 24 घंटे के भीतर जीव इक्कीस हजार छः सौ (21,600) बार श्वास–प्रश्वास की प्रक्रिया से गुजरता है । साधक इतनी बार अजपाजप की गायत्री भी जपता है । इसी ओर संकेत करते हुए कबीर ने कहा है:–

''सहस इक्कीस छः सौ धागा, निहचल नाकै पावे ।''

राम–नाम कबीर का बीज–मंत्र है । इसके जाप से ही कुंडलिनी जागृत होकर सहस्रार में चढ़ती है । अजपाजप से साधक प्राण शक्ति पर अधिकार प्राप्त करता है ।

4.0 सुरति शब्द योग :– सुरति शब्द योग का ही प्राचीन नाम नादानुसंधान योग है । मानव शरीर में बहुत सी नाड़ियाँ विद्यमान हैं । जिनमें तीन मुख्य हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना । इड़ा सूर्य की, पिंगला चंद्र की और सुषुम्ना अग्नि की प्रतीक है । कबीर ने इन्हीं प्रतीकात्मक नामों का प्रयोग ज्यादा किया है । इड़ा प्राणवायुवाहिनी है और पिंगला अपानवायुवाहिनी । प्राण अपान पर अधिकार होने से योगी कालातीत हो जाता है । मेरूदंड के भीतर से जो नाड़ी ऊपर की ओर जाती है उसे सुषुम्ना कहा जाता है । ये तीनों नाड़ियाँ दोनों भौहों के बीच में मिलती है । इस स्थल को त्रिकुटी कहा जाता है । सुषुम्ना जब अपनी यात्रा आरंभ करती ह तो उसे छः चक्रों को पार करना पड़ता है । सबसे नीचे 'मूलाधार चक्र' है । दूसरा चक्र 'अनाहत चक्र या हृदय चक्र' कहा जाता है । 'मणिपूर' नामक तीसरा चक्र नाभिमूल में स्थित है । चौथा 'अनाहत

चक्र या हृदय चक्र' के पास स्थित है । पॉचवा चक्र 'विशुद्ध' कंठ में और छठा 'आज्ञा चक्र' दोनों भौहों के बीच में स्थित है । कबीर कहते हैं :–

''अरध–उरध की गंग–जमुना, मूल कॅवल कौ घाट ।3
षट्चक्र की गागरी, त्रिवेणी संगम बाट ।''

5.0 सहस्रार चक्र –सहस्रार चक्र सिर के ऊपर शून्य में स्थित है । कबीर ने इसे 'गगन मंडल' कहा है । सहस्रार को शिव पद या ब्रह्मपद भी कहा गया है । कुंडलिनी की उर्ध्वयात्रा सहस्रार चक्र में ही समाप्त होती है ।

6.0 कुंडलिनी – कुंडलिनी एक शक्ति है जो मूलाधार चक्र के अधोभाग में स्थित है यह मूलाधर चक्र में सर्पिणी की भांति अधोमुख सोयी रहती है । इड़ा और पिंगला नाड़ियां पर बहते हुए प्राण और अपान जब योग द्वारा एकीभूत हो जाते हैं तो कुंडलिनी जागृत होकर सुषुम्ना में प्रविष्ट हो जाती है और क्रमशः सभी चक्रों को पार कर सहस्रार चक्र में पहुंचती है । इसी चक्र में कुडलिनी के अवस्थित होने पर साधक को अनाहद नाद की प्रतीति होती है।

7.0 अनाहद नाद – कबीर ने इसे अनहद नाद कहा है । अन्य नाद तो आहत होने पर ध्वनि उत्पन्न करते हैं किंतु शरीर के भीतर एक नाद बिना आहत हुए ही उत्पन्न होता रहता है । यह ब्रह्मांड में व्याप्त नाद का प्रतिनिधि है। अनहदनाद की कोरी साधना के प्रति कबीर ने कोई रूचि नहीं दिखलाई:–

'हिरदै कपट हरि सूं नहीं साचौ, कहा भयौ जै अनहद नाच्यौ ।''

कबीर की मान्यता थी कि अजपाजप से ही प्राण, अपान अवरूद्ध हो जाते हैं और कुंडलिनी सुषुम्ना में प्रविष्ट कर जाती है । ऐसी स्थिति में शरीर के भीतर अनहद नाद सुनाई पड़ता है। पारंभ में यह नाद कर्कश होता है और साधना के सोपानों के साथ–साथ मधुर होता जाता है । सुषुम्ना से लेकर सहस्रार चक्र तक यह नाद झंकृत होता है । ज्यौं–ज्यौं इस नाद में सुरति समाहित होती जाती है, त्यौं–त्यौं यह सूक्ष्म होता जाता है । अंत में यह अनहद नाद भो समाप्त हो जाता है और केवल निःशब्द ही शेष रह जाता है । यह शब्द ही परमात्मा है । यही अवस्था परमात्मा के साक्षात्कार अर्थात् निरति की अवस्था है । इस अवस्था में सुरति निरति में समा गई । कबीर के अनुसार यह साधना की पूर्णावस्था है ।

8.0 सहज समाधि :– जब सुरति शब्द योग द्वारा प्राण और चित् का लय हो जाता है । सुरति–निरति में समा जाती है । तब इस अवस्था का अनुभव होता है । इस अनुभव के बाद मन विषयों की ओर नहीं जाता । वह परमपद में ही सदैव डूबा रहता है । चित्त सदैव के लिए

परमपद के एकाकार हो जाता है । यहॉ सारी साधना समाप्त हो जाती है । सहज समाधि की दशा होने पर सब कुछ प्रभुमय प्रतीत होने लगता है । कबीर ने इसी अवस्था का वर्णन निम्न शब्दों में किया है –

''लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल
लाली देखन में गई, मैं भी हो गई लाल ।।''4

कबीर साहित्य का अवलोकन करने से यह प्रकट होता है कि उनकी अनोखी योग पद्धति में जहॉ शतदत कमल, नाड़ीचक्र, प्राणवायु–निरोध, त्रिवेणी–स्नान, सहज–समाधि इत्यादि साधनात्मक संकेत प्राप्त हैं । वहॉ उन्होंनें यह भी निर्देश किया है कि योगी मेरूदंड के शिखर पर स्थित चन्द्रमा से झरते हुए सुधारस का पान करता है । संक्षेप में कबीर की योग–साधना का यही स्वरूप है । जिसका बहुत कुछ निर्वाह हिंदी के मध्ययुगीन संत साधकों ने किया है ।

9.0 संदर्भ :–

1– 'कबीर ग्रंथावली', पृ0 102:42
2– 'कबीर ग्रंथावली', पृ0 14:22, 23.
3– 'शिव संहिता', पृ0 123–24
4– 'कबीर बीजक', रमैनी 69